विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१
पोस्टल रजि. नं. NS (M)–16/86

वर्ष १५ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२९ • फाल्गुन पूर्णिमा [शक] • दि. २५–३–१९८६ • अंक १०

आत्म कथन:

बाबा–प्रणाम !

"मूल के मुकाबले ब्याज ज्यादा प्रिय लगता है." इस कहावत के आधार पर यह मान्यता है, और सही ही है कि दादा को अपने बेटे के मुकाबले पोता ज्यादा प्रिय लगता है. शायद इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप पोते को अपने पिता के मुकाबले दादा अधिक प्रिय लगता है.

इसी कारण अपने बचपन की जो यादें बची हैं उनमें का एक चेहरा स्मृतिपटल पर बहुत उभरकर आता है वह है दादा याने बाबा बसेसरलालजी का. उन्होंने ७३ वर्ष की वृद्ध अवस्थामें अपनी देह त्यागी. उस समय मेरी उम्र ७-८ वर्ष की रही होगी.

उनकी कुछ बातों ने मेरे बाल–हृदय पर बड़ा गहरा असर डाला. वह मुझे जीवन भर प्रभावित करती रहीं. बाबा के मन में ब्रह्मदेश और ब्रह्मदेशवासियों के प्रति बड़ा स्नेह था जिसे कि वे अक्सर व्यक्त करते थे. उनसे सुनी हुई कुछ एक घटनाओं का वर्णन आज भी तरोताजा है.

एक घटना वे अक्सर सुनाया करते थे. उनका व्यापार कपड़े का था. किराए के घोड़ों या खच्चरों पर अपना माल लादकर वे बहुधा पूर्वी बर्मा के पहाड़ी-पठारी इलाकों में बेचने जाते थे. शान जाति के उस प्रदेश में उन दिनों साप्ताहिक हाट-बाजार लगा करते थे. अलग-अलग स्थानों की हाटें सप्ताह के अलग अलग दिन लगती थीं ताकि व्यापारी एक हाट पर अपना माल बेचकर थोड़ी सी यात्रा द्वारा दूसरे या तीसरे दिन किसी अन्य स्थान पर लगी हाट तक पहुँच सके. यों कई दिनों की यात्रा करके अलग अलग हाटों पर अपना माल बेचकर वे मांडले लौट आते थे. इस यात्रा के दौरान जहाँ रात्रि-पड़ाव डालना पड़ता, वहां गांव वालों की ओर से खुली धर्मशालाएँ बनी रहती थीं. इसका प्रचलन कहीं कहीं आजकल भी है. एक बड़ा सा मंच जो ऊपर से छाया हुआ, पर चारों ओर से खुला. कोई दीवार नहीं. उसे बरमी भाषा में "जया" कहते हैं, उसी पर यात्री अपना सामान रखकर रात को आराम से सोता और सुबह आगे की यात्रा पर निकल जाता. इसका कोई किराया नहीं लिया जाता, बल्कि गांव वाले सेवाभाव से इसे झाड़-बुहारकर साफ रखते और समीप ही पानी का प्रबंध भी कर देते.

बाबा ने बताया उन दिनों लेन-देन में चांदी के रोकड़ी रुपए ही चलते थे. बाबा इन रुपयों को एक नोली (कपड़े की संकड़ी लंबी थैली) में भरकर उसे कमर में बांधकर यात्रा करते थे. रात को थैली कमर से खोलकर सिरहाने तकिए के नीचे रखकर सोते थे. एक दिन सुबह सूर्योदय के पूर्व जल्दी उठकर चलना था. उठने में जरा देर हुई तो हड़बड़ाकर जल्दी जल्दी घोड़ों पर सामान लादकर यात्रा पर निकल पड़े. पाँच-छह घंटे की यात्रा पूरी करने के बाद होश आया कि रुपयों की नोली तो जया पर ही छूट गयी. चिंता हुई, घोड़ेवालों से वापस चलने के लिए कहा, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया. उन्होंने जोर देकर कहा कि अगली हाट की दुकानदारी पूरी करके ही लौटें. थैली सही सलामत मिल जायेगी. बाबा को चिंता थी पर घोड़ेवालों की बात माननी पड़ी. चार-पांच दिन बाद लौटे तो मन में धड़कन थी कि इस बार की कमाई गई सो तो गई, मूल धन से भी घाटा होगा. नोली रुपयों से भरी थी. पर वापस पहुँचे तो आश्चर्य हुआ. देखा कि उस खुले मंच पर रुपयों की नोली ज्यों की त्यों पड़ी है. गिन कर देखा तो रुपए पूरे. एक भी कम नहीं था. किसी ने उसे छुआ तक नहीं. न गांववालों ने और

धम्म वाणी

सब्ब दानं धम्मदानं जिनाति
सब्ब रसं धम्म रसो जिनाति ।
सब्बं रतिं धम्मरतिं जिनाति
तण्हन्खयो सब्ब दुक्खं जिनाति ॥

धम्मपद–२४/२१

धर्म का दान सब दानों को जीत लेता है ।
धर्म का रस सब रसों को जीत लेता है ।
धर्म का भोग सब भोगों को जीत लेता है ।
तृष्णा का क्षय सब दुक्खों को जीत लेता है ।

न सैकड़ों की संख्या में यात्रा करने वाले राहगीरों ने, जो कि रात बिताने के लिए उस जगा पर सोए होंगे. बाबा कहा करते थे कि इस देश के लोग बड़े ईमानदार हैं. यहाँ चोरियाँ नहीं होती.

एक घटना और सुनाते थे. मांडले शहर के बाजार में किसी दूकान के सामने फुटपाथ पर किसी के कान की हीरे की लौंग (लडाऊँ) असावधानीवश गिर पड़ी. लोग उसे देखते, पर कोई उठाता नहीं. सुबह झाड़ू देनेवाली महिला आती, वह भी उसे उठाकर झाड़ू लगा देती और फिर उसे उसी स्थान पर रख देती. ७ दिन बाद राज्य का एक अधिकारी उसे उठा ले गया और नगरी में डुंडी पिटवा दी गयी कि किसी महिला का लडाऊँ खो गया हो तो उसे पहचानकर सरकार से ले जाय. ऐसे ईमानदार लोग हुआ करते थे बरमा के.

उन्होंने बताया कि उन दिनों घरों में ताले नहीं लगते थे. ताले लगाने की प्रथा ही नहीं थी. केवल कुत्ते, बिल्ली, गाय, बैल आदि पशुओं को दूर रखने के लिए दरवाजेपर सिटकनी होती थी, पर ताले नहीं. धनी से धनी नागरिक के घर पर भी ताले नहीं होते थे. बरमी नरेश के राज्य में यही प्रचलन था. अंग्रेजी राज्य में अनेक विदेशी आ बसे और धीरे धीरे सामाजिक व्यवस्था बिगड़ने लगी तो चोरियाँ होने लगीं, ताले लगाए जाने लगे. ताले तोड़कर भी चोरियाँ होने लगीं.

बर्मी नरेश मिन् डो मिन् के राज्यकाल में ही बाबा बरमी राजधानी मांडले में बस गए थे अथवा इसके कुछ काल पश्चात्, यह निश्चित रूपसे नहीं मालूम. परन्तु अंतिम बर्मी नरेश तीबो के राज्यकाल में अवश्य मांडले में ही बसे हुए थे. उसे वे फुंगी (फौंजी) याने भिक्षु नरेश कहते थे. पता नहीं क्यों? राजगद्दी पर बैठने के पूर्व कई वर्षों भिक्षु रहा इसलिए अथवा धार्मिक प्रवृत्ति का था इसलिए. वैसे अंग्रेजी इतिहासकारों ने इस बर्मी नरेश की बड़ी बुरी छवि प्रस्तुत की है. परन्तु इसका कारण राजनैतिक हो सकता है. राजा वस्तुतः भला रहा होगा. बाबा की नजरों में तो भला था ही. उन्होंने उसके राज्य खोने और अंग्रेजों द्वारा बंदी बनाकर किले से नदी-तट तक ले जाने का हृदय-विदारक दृश्य आंखों–देखा था और उसकी चर्चा बड़े दुखी मन से किया करते थे. बर्मा की स्वाधीनता खोए जाने का उन्हें दुःख था. अंग्रेजी शासन को वे भारत और बर्मा दोनों के लिए दुर्भाग्य-जनक मानते थे.

बर्मी नरेश के प्रति उनके मनमें बड़ी श्रद्धा थी. उनके कथनानुसार बर्मी नरेश और बर्मी राज्य-अधिकारियों के मन में भारतीय व्यापारियोंके प्रति बहुत स्नेह और आदर था जो अंग्रेज आदि अन्य विदेशी व्यापारियों के लिए ईर्ष्या का कारण बन गया था. जब दक्षिण बर्मा से व्यापारी मांडले तट पर माल लाते तो उस पर चुंगी ली जाती थी. भारतीय व्यापारी से अधिकारी बड़ी नम्रता से पेश आते. पूछते क्या सामान लाया है? उसकी पेटियाँ कभी खोलकर नहीं देखते. उस पर पूरा पूरा विश्वास करके उसके बयान के अनुसार चुंगी लगा देते. परन्तु औरों की पूरी छान-बीन करते थे. यह स्थिति बहुत वर्षों तक चली. लेकिन बादमें कुछ एक भारतीय व्यापारियोंने झूठ बोलकर सरकार को धोखा देना शुरू किया. विश्वासघात किया. कीमती मखमल से भरी पेटी पर दो-चार हल्के मारकीन के थान जचाकर कम चुंगी देकर सरकार को ठगने लगे. अन्ततः पोल खुली और कुछ लोगों की बेईमानी के कारण सभी भारतीय व्यापारियों ने अपनी साख खो दी. एक दो सड़ी गली मछलियाँ सारे तालाब को गंदा कर देती हैं. दो-एक बूंद काजी सौ मन दूध फाड़ देती है.

बाबा बताते थे कि प्राचीन बर्मा में "कुल" (कला) शब्द भारतीयों के लिए बड़े सम्मान से प्रयोग किया जाता था. (पालि वाङ्मय के "महाकुल" अनाथपिंडिक, "महाकुल" विशाखा की भांति) परन्तु थोड़े वर्षों में इन भ्रष्ट व्यापारियों की वजह से यह शब्द अत्यंत घृणा सूचक सम्बोधन बन गया. व्यापारी ईमानदारी खोकर अपनी साख खो देता है. साख खो देता है तो सब कुछ खो बैठता है. बाबा ईमानदारी को ही व्यवसाय की उन्नति का मुख्य कारण मानते थे. ईमानदारी को ही समृद्धि और सुख-शांति का मूल मानते थे यद्यपि मेरे देखते वह व्यापार से कब के निवृत्त हो चुके थे. पर इस दिशा में उनके विचार सुनने को मिलते थे और उसका असर सब पर होता था. वे ग्राहक को अन्नदाता कहते थे और उसे धोखा देना बड़ा दोष मानते थे. उनका यह सिद्धान्त घरमें सभी मानते थे. मेरे एक ताऊजी तो इसे अतियों की सीमा तक पालते थे.

बाबा की और भी कई बातों का जीवन में गहरा असर हुआ. उन्हें अखबार का बहुत शौक था पर आंख ठीक न होने के कारण रोज मुझसे पढ़वाकर सुनते थे. भारत और बर्मा की राजनीति में बहुत रस लेते थे. इसका असर मेरे मन पर भी खूब पड़ा. रोज अखबार पढ़ना जैसे एक व्यसन ही हो गया.

बाबा का साहित्य प्रेम अनूठा था. लोक साहित्य का भंडार भरा था उनके स्मरण-कोश में. न जाने कितनी लोक-कथाएँ सुनाया करते थे. उनके राजस्थानी दोहों का मन पर गहरा असर पड़ा. सौभाग्यसे मेरी पाठशाला के अध्यापक श्री कल्याणदत्त दूबे भी कवि और काव्यप्रेमी थे. हिन्दी भाषा का सामान्य ज्ञान कराकर मेरी हिंदी की पुस्तकी पढ़ाई उन्होंने 'रहिमन सुधा' से शुरु कराई जो कि रहीम के दोहों का एक संग्रह है. परिणाम यह हुआ कि ७–८ वर्ष की उमर में ही पहला दोहा रचकर मैंने बाबा को सुनाया तो वे बड़े प्रसन्न हुए और फिर बहुत जोरों से खिलखिलाकर हंसे भी. उनके हंसनेका कारण बहुत दिनों बाद समझ में आया. हुआ यह कि जो पहला दोहा बनाया उसमें मैंने 'रहिमन' शब्द जोड़ दिया था. स्कूल में रहिमन सुधा के दोहे पढ़ता था तो उसमें 'रहिमन' अथवा 'रहीम' शब्द हर दोहों में जुड़ा हुआ पाता था तो इनमें से किसी एक को जोड़ना अनिवार्य समझ बैठा था. यह तो बाद में पता चला कि बाबा इसी बात पर हंसे थे. उन्हें क्या पता था कि यही अबोध बालक वर्षों बाद अपने बाबा की याद में दोहों का एक ऐसा संग्रह तैयार करेगा जिसके हर दोहे में 'बाबा' शब्द जुड़ा होगा.

मांडले नगर से लगभग दस मील दूर ट्युंडाई गांव में एक गऊशाला थी. हर वर्ष गोपाष्टमी पर वहाँ एक मेला लगता था. बाबा हम सब बच्चों को उस मेले में ले जाते और हम बालसुलभ चपलता का वहाँ पूरा लाभ उठाते. वहीं शाम को एक सार्वजनिक सभा होती जिनमें अनेक लोगों के भाषण होते. बाबा उसमें बहुत रस लेते. एक बार मास्टर दूबे जी ने मेरे लिए एक ७–८ पन्ने का भाषण तैयार करके इस मेले में पढ़कर सुनाने का प्रबंध किया. बाबा को पता चला तो उन्होंने कहा कि पढ़कर सुनाना प्रभावशाली नहीं होता. कंठस्थ याद करके सुनाना चाहिए. बस धुन लग गयी. कुछ दिनों की तैयारी में ही कंठस्थ कर लिया और मेले की सभा में उसे बिना पढ़े ही सुनाया. बाबा बहुत खुश हुए. लगा कि भविष्य के लिए ट्रेनिंग दे रहे थे.

घर में सभी लोग दोपहर का भोजन १२–१ बजे और रात का ७–८ बजे लेते थे पर बाबा को बर्मियों की भोजन समय-सारिणी बहुत प्रिय थी. वे नित्य नियमित दोपहर का भोजन सुबह १० बजे और रात्रि का भोजन शाम को ५ बजे ही लेते थे. भोजन बनानेवाली उनकी बहुएँ उनके मनमुताबिक समय पर भोजन बनाकर उन्हें परोसती थीं. देखता हूँ कि शिविरों में भोजन की यही समय-सारिणी कितनी स्वास्थ्य-वर्धक रहती है. और घर पर कभी देर से रात्रि-भोजन करता हूँ तो स्वास्थ्य की कितनी हानि होती है.

बाबा को कभी पूजा-पाठ या भजन-कीर्तन करते नहीं देखा. व्रत, उपवास या पठन-पाठन करते नहीं देखा. नगर में एक सत्य-नारायण मंदिर था परन्तु उन्हें वहां भी जाते नहीं देखा. यहां तक कि कृष्णाष्टमी पर जब वहां हिंडोलों की सजधज होती, धूमधाम से त्यौहार मनता तब भी उसे देखने नहीं जाते. बाबा की एक बेटी थी, हमारी बुआ चांदाबाई जो कि बालविधवा और निःसंतान थी. वह पीहर ही रहती थी. हम बच्चों को तो वह बहुत प्यार करती थी परन्तु कभी कभी बाबा पर किसी बात पर खफा हो जाती तो बड़े जोरों से उलाहना देती थी "बापू! तुम्हार लिए न राम न रैम, न माला न मनका, न तीरथ न बरत. उमर यूं ही खो दोगे तुमतो."

परन्तु बाबा मुस्कराकर उसकी बात टाल देते. उसी बाबा को हमने देखा कि बहुधा हम बच्चों को साथ लेकर मांडले से ४–५ मील दूर भगवान महामुनि बुद्ध के मंदिर में जाते और वहां कुछ देर चुपचाप बैठे रहते. मैं नहीं जानता कि कोई ध्यान करते या ऐसे ही बैठे रहते थे. हमारे यहां मंदिरों में इतनी गंदगी और इतना हल्ला-गुल्ला, शोर-शराबा होता है कि सफाई और शांति खोजे नहीं मिलती. परन्तु जब बाबा-संग महामुनि मंदिर में जाता तो वहाँ स्वच्छता ही स्वच्छता, शांति ही शांति मिलती थी. बड़ा प्रसन्न होता था वहाँ जाकर.

बाबा कभी कभी बच्चों को मांडले के किले में बर्मी राजा का पुराना महल दिखाने ले जाते थे. महल के दरबार, सभागृह, रनिवास आदि का परिचय बड़े विवरण के साथ देते. इसके बाद महल से थोड़ी दूर पर उगे हुए एक पीपल के पेड़ तले अवश्य जाते. वहाँ कुछ देर विश्राम के लिए बैठते. मुझे याद है वहाँ भी महामुनि पगोडा की सी शांति महसूस होती. उस पीपल की छाया का आकर्षण इतना बढ़ा कि मैट्रिक की परीक्षा के पूर्व दस दिन के लिए पढ़ाई की जो छुट्टी मिली वह मैंने वहीं बितायी. रोज सुबह अपनी साईकिल पर, भोजन पुस्तकें साथ लेकर घरसे दूर किले के भीतर उस पीपल के पेड़ तक चला जाता और उसके नीचे पढ़ने बैठता और शामको ही घर लौटता. इसका बड़ा शांतिपूर्ण प्रभाव पड़ा मन पर.

यों बाल्यावस्था में ही बाबा ने साहित्य-प्रेम और शुद्ध धरम के जो बीज मानस में बोए वे कालांतर में खूब फले-फूले.

बाबा के बर्मा बस जाने के कारण ही उस मंगल देश में मेरा जन्म हुआ. व्यापारी के घर जन्मा, अतः धन-संपदा तो कहीं भी कमा लेता. परन्तु उस देश में गृहस्थ संत गुरुदेव ऊ बा खिन से सपर्क हुआ और शुद्ध धर्म का अनमोल रतन कमाया, जिसने मुझे सदा के लिए धनकुबेर बना दिया. बाबा ऐसे परम उपकारी थे मेरे. उनकी पावनस्मृति में उन्हें शत् शत् प्रणाम.

धर्मपथिक,
स. ना. गो.

विपश्यना : चित्त निर्मल करने की साधना

– लाभुबेन मेहता

यह काम हम अपने श्वास-निरीक्षण से आरंभ करते हैं. केवल सांस देखने से चित्त के निर्मल होने की बात मित्रों के मनमें नहीं बैठती. परंतु जिन जिन लोगों ने शिविर में भाग लिया, उन्हें निश्चय हो चुका है कि विपश्यना ही मानव को मुक्ति दिला सकती है. मुक्ति याने मानव मन को जकड़े रखनेवाली राग-द्वेष, क्रोध-अह, मोह-माया आदि की ग्रन्थियों से मुक्त करना.

साधक को स्वयं कठोर तप और सतत् पुरुषार्थ करना पड़ता है. सफलता प्राप्त करने के लिए गंभीर अनुशासन-संहिता का पालन करना जरूरी है. अनुशासन-संहिता पढ़ते समय तो कहीं कहीं ऐसा लगता है कि बहुत सी बातें अनावश्यक लिखी गयी हैं परंतु ये सारी बातें बहुत व्यावहारिक रूपसे अनुभव द्वारा जोड़ी गयी हैं. विपश्यना द्वारा साधक अन्तर्मुखी होता है तो राग, द्वेष, मोह, अहंकार पिघलने लगते हैं. जिन विकारों से हम सदैव परेशान रहते हैं वे मात्र देखने की कला सीखकर दूर किये जा सकते हैं और उनसे छुटकारा पाया जा सकता है. विपश्यना से साधक की प्रज्ञा जाग्रत होती है, शील पुष्ट होता है, और मानस निर्मल होता है, परिणामतः स्वस्थ मन मैत्री, करुणा और मुदिता से पुलकित हो उठता है.

अपने समाज में साधु-संत, नेता अथवा किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के आगे-पीछे, अगल-बगल, चार-छह सेवक या शिष्य घेरे हुए ही चलते हैं. परंतु यहां मैंने देखा कि जब गुरुदेव ट्रेन से उतरे तो उनके निजी सेवक के अतिरिक्त वहां और कोई नहीं था उनके निजी सेवक ने कुली से सामान उठवाया और वह आश्रम की ओर पैदल चल पड़े.

गुरुजी का नियम है कि रोज रात्रि के समय विश्राम के पहले साधकों से वार्तालाप करके शंका समाधान करते हैं. उस समय भी

बे और माताजी अपने निवास से हॉल तक अकेले ही आते हैं. उनके साथ और कोई नहीं रहता. गुरुदेव के हाथ में टॉर्च होती है, उसके उजाले में माताजी भी साथ साथ चलती हैं. हॉल के पिछले दरवाज़े से वे धीरे से आकर अपने स्थान पर बैठ जाते हैं. फिर वहां प्रश्नोत्तरी चलती है जिनके उत्तर वे बड़ी शांति से देते है. कोई मूर्खतापूर्ण प्रश्न भी करता है तो कोई एक ही प्रश्न बार बार दुहराता है, फिर भी वे नाराज नहीं होते, आक्रोश में नहीं आते बल्कि मुस्कान व मीठी हँसी के साथ सहजभाव से उत्तर देते हैं. मुझे लगा कि जैसे 'समता' ने स्वयं ही गुरुदेव का रूप धारण किया है. लोग जब ध्यान करने बैठते हैं तो गुरुदेव बड़े मधुर स्वरसे निर्देश देते हैं. तब लगता है कि वे बस इसी तरह बोलते रहें... यथा 'शांत मन से, तटस्थ मनसे काम करते रहें...' उनके ये बोल ऐसे होते हैं कि सुनते ही मन शांत होने लगता है.

धम्मगिरि की स्वच्छता मन को मोह लेती है. वहां की शांति मन को शीतलता देती है. कई एकड़ क्षेत्र में फैले हुए आश्रम में सैकड़ो व्यक्तियों का निवास होने पर भी कहीं कूड़े-कचरे का नामो-निशान नहीं, जरा भी आवाज नहीं. सब मौन रहकर चलते-फिरते पुतले जैसे दीखते हैं फिर भी किसी के मुँह पर अरुचि या थकान नहीं दीखती, बल्कि मीठी प्रसन्नता और ताजगी ही दीखती है.

अंततः यदि कोई यह प्रश्न पूछे कि यहां का श्रेष्ठतम् दृश्य कौन सा है तो मैं कहूंगी कि सुबह की साधना-वंदना के बाद गुरुजी और माताजी का मंगल वाणी गाते और आशिर्वाद देते हुए अपने निवास की ओर जाना. "सबका मंगल, सबका मंगल, सबका मंगल होय रे" इन आशिर्वचनोंका उच्चारण करते हुए, बौद्ध भिक्षुओं की भांति आशिर्वाद की मुद्रा में जब गुरुजी और माताजी प्रस्थान करते हैं, उस समय ऐसा लगता है मानो तपस्वी भिक्षु जनता का मंगल मनाते हुए प्रस्थान कर रहे हों. उस समय रोम रोम आनंद से झनझना उठता है.

(गुजराती भाषा के दैनिक पत्र "जन्म-भूमि" में प्रकाशित लेख का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद-साभार उद्धत).

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७.
की मंगल कामनाओं सहित्र

दूहा धरम रा

थे बिरमा भल बासियो, सारा मिटग्या सोक ।
बाबा ! दोनूं सुधरग्या, लोक और परलोक ॥१॥
अन धन जस लिछमी मिली, सुख संपद भंडार ।
बाबा ! तेरै कारणै, मिल्यो धरम रो सार ॥२॥
बाबा ! तेरो रिण घणो, है उपकार अनंत ।
धरम देस बासो इस्यो, हुयो समागम संत ॥३॥
मानव जीवन रतन सो, हो ज्यातो बरबाद ।
बाबा ! जो न चखावतो, गुरुवर इमरत स्वाद ॥४॥
बाबा ! दूधां घी घणो, काढन की ना रीत ।
गुरुवर दियो बिलोवनो, मथ काढ्यो नवनीत ॥५॥
पारस परसै लोह नै, सुवरण देय बणाय ।
बाबा ! गुरुवर लोह नै, पारस दियो बणाय ॥६॥

दोहे धर्म के

बाबा ! बर्मा ही मिला, गुरुवर संत सुजान ।
शुद्ध धरम ऐसा दिया, हुआ परम कल्याण ॥१॥
बाबा ! मरुधर भटकते, रहा विकल गुमराह ।
गुरुवर सरवर सा मिला, अमृत भरा अथाह ॥२॥
बाबा ! सुन गुरुदेव के, मंगलमय उपदेश ।
चला धरम के पंथ पर, कटे करम के क्लेश ॥३॥
बहिर्मुखी हो भटकते, जीवन रहा गंवाय ।
बाबा ! गुरु ऐसा मिला, अन्तस दिया दिखाय ॥४॥
बाबा ! अन्तर्जगत में, बही धरम रस धार ।
रूखा सूखा चित चमन, हुआ पुनः गुलजार ॥५॥
धर्म रतन संचित किया, मां बरमा की गोद ।
बाबा ! जन जन बांटते, उमड़े मन में मोद ॥६॥

विपश्यना विशोधन विन्यास के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. दूरभाष : ८६
मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक–४२२ ००७. टेलिफोन : ३०२५१ ● वार्षिक शुल्क रु. १०/-आजीवन शुल्क रु. १००/–

"विपश्यना" 3/86
पो. र. नं. Ns (M) 16/86

Licence No. NS 18
Licensed to post Without pre-payment

प्रेषक :
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र, मध्य रेल्वे)

To